योगवासिष्ठ में अध्यात्म के सूत्र

प्रो. प्रभावती चौधरी, अध्यक्षचर, संस्कृत विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय जोधपुर

अद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादक ग्रन्थ योगवासिष्ठ अध्यात्म का एक उच्चकोटिक समुज्ज्वल रत्न है। ब्रह्माद्वैत के प्रतिपादक इस ग्रन्थ में औपनिषदिक सरणि का अनुगमन करते हुए प्रश्नोत्तर एवं सरस कथाओं द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, लय, बन्ध, मोक्षादि परक जिज्ञासाओं का उपशमन किया गया है। ग्रन्थारम्भ में अरिष्टनेमि द्वारा संसारबन्ध के दु:ख से मुक्ति का उपाय पूछे जाने पर वाल्मीकि प्रदत्त उत्तर इस शास्त्र के माहात्म्य का निरूपण करता है–

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि रामायणमखण्डितम्।
श्रुत्वाऽवधार्य यत्नेन जीवन्मुक्तो भविष्यति
वसिष्ठरामसंवादं मोक्षोपायकथां शुभाम्।।[१]

वाल्मीकि कहते हैं–हे राजन्! मैं सम्पूर्ण रामायण का कथन करूंगा। वसिष्ठ–राम संवाद रूप, मोक्ष की उपायभूत शुभ कथा को सुन कर एवं सम्यक् रूप से प्रयत्नपूर्वक धारण करके आप जीवन्मुक्त हो जाएंगे। योगवासिष्ठ के इस माहात्म्य के कारण इसे महारामायण व मोक्षशास्त्र के नामों से भी अभिहित किया जाता है।

इस शास्त्र को पढ़ने का अधिकारी भी वही है जिसे स्वयं के बद्ध होने का ज्ञान है एवं 'मैं विमुक्त हो जाऊंगा' ऐसा निश्चय है जो न तो अत्यन्त अज्ञानी है व न ही तत्त्ववेत्ता है।[२] इससे इतर इस शास्त्र को पढ़ने का अधिकारी नहीं है।

शास्त्र का प्रयोजन–भरद्वाज मुनि द्वारा जीवन्मुक्ति विषयक प्रश्न पूछे जाने पर वाल्मीकि कहते हैं कि–'इस दृश्य जगत् का अत्यन्त अभाव है। इसके न होने पर भी प्रतीति हो रही है।' इस प्रकार का बोध आत्मज्ञान के बिना संभव नहीं है अर्थात् आत्मज्ञान के अभाव में दृश्य जगत् यथार्थ प्रतीत होता है जबकि वस्तुत: उसका अस्तित्व है ही नहीं, जैसे आकाश में वस्तुत: न होने पर भी नील पीत आदि वर्णों

का बोध होता है। अत: इस भ्रम अथवा अज्ञान की निवृत्ति के लिए आत्मज्ञान की प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए। इस शास्त्र का इसीलिए प्रसार है–

स चेह संभवत्येव तदर्थमिदमाततम्।
शास्त्रमाकर्णयसि चेत्तत्तमाप्स्यसि नाऽन्यथा।।[३]

सम्पूर्ण ग्रन्थ सात प्रकरणों में निबद्ध है–

(१) वैराग्य प्रकरण (२) मुमुक्षु व्यवहार प्रकरण (३) उत्पत्ति प्रकरण (४) स्थिति प्रकरण (५) उपशम प्रकरण (६) निर्वाण प्रकरण (पूर्वार्द्ध) (७) निर्वाण प्रकरण उत्तरार्द्ध।

सम्पूर्ण शास्त्र में अद्वैत की प्रतिष्ठा एवं स्वरूप बोध परम प्रयोजन के रूप में प्रतिपादित है। इसी सन्दर्भ में विविध कथाओं द्वारा जीव, मन, अहङ्कार, अद्वैत में द्वैतभ्रम, आत्मज्ञान, प्राण–निरोध आदि विषयक जिज्ञासाओं का उपशमन किया गया है। अत: अनेक स्थानों पर पुनरुक्ति की प्राप्ति है किन्तु अध्यात्म के रहस्यों को अनावृत करने में इसकी महती भूमिका है।

अद्वैत की प्रतिष्ठा– योगवासिष्ठ के सभी प्रकरण ब्रह्म की प्रतिष्ठा एवं ब्रह्म में जगत् के भ्रम की स्थिति का निरूपण करते हैं। यह दृश्य जगत् वस्तुत: ब्रह्मरूप ही है। ब्रह्म से भिन्न जगत् की कुछ भी स्थिति नहीं। इसका प्रतिपादन सम्पूर्ण शास्त्र में विस्तृत रूप से प्राप्त है। ब्रह्म ही सभी प्रकार के भावों से अनवच्छिन्न, शान्त व एकरूप में भासित है अत: वहाँ अन्यत्व कैसे संभव है:–

सर्वभावानवच्छिन्नं यत्र ब्रह्मैव विद्यते।
शान्तं समसमाभासं तत्राऽन्यत्वं कथं भवेत्।।[४]

महर्षि वसिष्ठ कहते हैं कि न चित्त की स्थिति है, न अविद्या, न मन है, न ही जीव है ये सभी ब्रह्म की कल्पनाएं हैं जो सम्पत् हैं, जो दृष्टियां हैं, जो चित्त हैं व उसकी एषणाएं हैं वे सभी ब्रह्म से भिन्न कुछ भी नहीं हैं। जैसे समुद्र में तरङ्गें व बुद्बुद् होते हैं, विजृम्भित होते हैं परन्तु वे समुद्र के जल से भिन्न नहीं हैं अपितु जल ही हैं।[५]

चिदाकाश में स्फुरित हुआ चिदाकाश ही स्वयं के स्वरूप को देखता हुआ प्रकाशित होता है अपितु द्रष्टा व दृश्य वह स्वयं ही है उससे अन्य कुछ भी नहीं है।[६]

एकं द्रष्टा दृश्यं च चिन्नभ: सर्वग: मत:।
तस्माद्यत्रेष्टं तत्तत्र दृष्टं तत्तत्र तत्सदा।।[७]

शान्त, कूटस्थ आत्मा में चित्तवत् जो प्रकाश है (चिदाकाश) वह चिदात्मा से भिन्न नहीं है क्योंकि चिदात्मा अव्याकृत व अमल है अत: सर्गादि की संभावना नहीं है। कूटस्थ आत्मा में बाह्याभ्यंतर विषयों का उदय होना जल में तरङ्गवत् ही है।[८]

जैसे वायु स्पन्दन को जानती है, उसी प्रकार का बोध चिति जगत् को अपना स्वरूप जानती है। उसमें द्वैत या अद्वैत भेद की संभावना कदापि नहीं है। अविवेक एवं विवेक द्वारा जगत् की प्रतीति व नाश होता है। ज्ञान हो जाने पर उदय व नाश की प्रतीति नहीं रहती।[९]

ज्ञप्तिमात्रादृते शुद्धादादिमध्यान्तवर्जितात्।
नान्यस्तीह निर्णीत: महाचिन्मात्ररूपिण: ।।[१०]

अर्थात् परम चैतन्य के ज्ञप्तिमात्र, शुद्ध, आदि-मध्य व अन्त से रहित होने के कारण यह निर्णीत है कि उससे भिन्न कुछ भी नहीं है। सर्ग व संवित् की वृत्तियों (कल्पनाएं भ्रमादि) में जो महाचैतन्य की छाया है वह ब्रह्म की अपेक्षा से स्थित है तथा अपने स्वरूप से उनकी कोई स्थिति नहीं है। जिसमें द्वित्व कदापि संभव नहीं है वही त्रिकाल में सत्स्वरूप एवं परमचैतन्य है वही विश्वरूप में प्रतीत है। उसके लिए किसी अन्य तर्क की अपेक्षा नहीं है।[११]

अहन्तादि रूप वाला यह जगत् तत्त्वज्ञान से असत्य हो जाता है परन्तु मोह के कारण सत्यवत् प्रतीत होता है। अत: जगत् का बोध केवल मूढ़ के लिए ही है ज्ञानी के लिए नहीं। अज्ञानी ही अद्वैत में द्वैत की कल्पना करता है।

अद्वैत में द्वैत का भ्रम–अनुभूति, वेदन एवं प्रतिपत्ति भी उस परम चेतना की अभिधा है, वह चैतन्य जब अनुभूति, वेदन एवं प्रतिपत्ति के द्वारा प्रत्यक्ष होता है तो 'जीव' संज्ञा से अभिहित होता है। वही संवित् 'पुमान्' भी कहलाता है। अहन्ता के प्रत्यय से युक्त वही 'पदार्थ' के रूप में जाना जाता है। इस प्रकार वही परम चैतन्य प्रत्यक्ष रूप में जगत् है। वही भ्रम-संशय आदि विविध विकल्पों वाला होकर अनेक अवस्थाओं के क्रम वाला होता है। जिस प्रकार जल तरंगादि के रूप में स्फुरित होता है परन्तु तरङ्ग जल से पृथक् नहीं है उसी प्रकार चैतन्य से भिन्न जगत् कुछ भी नहीं है। दिक् देश कालादि के रूप में भी वही भासित होता है-

रूपालोकमनस्कार पदार्थ व्याकुलं जगत्।
विद्यते वेदनस्यान्तर्वातान्त: स्पन्दनं यथा ।।
सर्वात्मवेदनं शुद्धं यथोदेति तदात्मकम्।
भाति प्रसृत दिक्कालबाह्यान्तरूपदेहकम् ।।[१२]

वह परम चैतन्य ही प्रत्यक्ष स्वरूप को प्राप्त कर भिन्न-भिन्न नामों से अभिहित है। वह जिस-जिस रूप में जहां समुल्लासित होता है शीघ्र ही स्थित होता हुआ वहां उसी रूप में प्रकट होता है। ब्रह्म की सत् आदि संज्ञाएं भी व्यवहार के लिए कल्पित हैं-

ऋतमात्मा परं ब्रह्म सत्यमित्यादिका बुधैः।
कल्पिता व्यवहारार्थं तस्य संज्ञा महात्मनः।।[१३]

जीव एवं मन की उत्पत्ति भी वस्तुतः ब्रह्म का ही रूप है। वही आत्मा स्वयं अन्य की तरह प्रकट होता हुआ अत्यन्त पीड़ा उत्पन्न करने वाली जीवता को प्राप्त होता है-

स तथाभूत एवाऽऽत्मा स्वयमन्य इवोल्लसन्।
जीवतामुपयातीव भाविनाम्ना कदर्थिताम्।।[१४]

कदर्थीकृत जीवता को प्राप्त, अत्यन्त व्याकुलता को प्राप्त वह भूतात्मा मनन से किञ्चित मन्थर होता हुआ 'मन' बनता है। इस प्रकार उस महान् व स्थिर परमात्मा से अस्थिर आकार वाला मन होता है। इस प्रकार यही परमात्मा का प्रथम मन है।[१५] फिर वह विविध संकल्पों की रचना करता है।

राम जिज्ञासा करते हैं इन विचित्र असंख्य भावों की नियति कौन है? वह स्थित-अचल किस प्रकार इन भावों का स्वभाव है।[१६]

वसिष्ठ इसका समाधान करते हुए कहते हैं कि उस निश्चल, शान्त, अनन्त व सत्य रूप ब्रह्म में काकतालीयवद् जो भान स्वतः ही जिस रूप में हुआ उसी रूप में अवस्थित हुआ वह जगत् कहलाता है।१७ उस सर्वशक्तिमान् का जब जैसा भान होता है वह उसी रूप में सत् है। इस प्रकार स्वस्वरूप में यथास्थित ब्रह्म का स्फुरण चिरकाल तक होता है उसी का सर्गकाल में भान है अन्तकाल में सूक्ष्म होने से वही अभान के समान हो जाता है। इसी की अभिधा नियति है-

इदमित्थंमिदं चेत्थं ब्रह्मेति भाति यत्।
तन्नियत्यभिधं प्रोक्तं सर्गसंहाररूपधृक्।।[१८]

परम चैतन्य में जो जाग्रत्, स्वप्न व सुषुप्ति का स्वतः स्फुरण होता है वह भी जल में द्रवतावत् ब्रह्म से अभिन्न है। स्वप्नवत् निज स्वभाव से चित् का जो स्फुरण है वही काल, क्रिया, आकाश, देश द्रव्यादि का आविर्भाव है। चिदाकाश में निराकार चित् का स्वाभाविक स्फुरण ही बाह्य दर्शन, मनन, देश, काल, क्रियादि है। कल्प से लेकर निमेष तक जो भी पदार्थों का स्वाभाविक स्फुरण है वह ब्रह्म का स्वभाव कहा गया है। जिस प्रकार संवित् के अंशभूत जीव का स्वभाव चित्स्वरूप है उसी प्रकार अपने

स्वरूप का त्याग न करते हुए एक ही संवित् से सैकड़ों पदार्थ हो जाते हैं–

एकस्य संवित्मात्रस्य पदार्थशतता तथा।
एकस्य संविदंशस्य रूपं सर्वं स्वमनुज्झतः।।[१९]

चिदाभास संविदों का संवित्मयी वृत्तियों में स्फुरण उनका स्वभाव ही है। उन वृत्तियों के वृत्याभास संविदों द्वारा स्वदेह के जिन–जिन आकारों की कल्पना की जाती है वही चित् का पृथिवी, जल, तेज, वायु व आकाश के रूप में स्फुरण है। उन सबका ब्रह्म ही आकाश रूप है। विद्वान् चित् को ही संवित् करते हैं जिसकी सर्वत्र गमन करने वाली सर्वरूपिणी अपनी ही महिमा से सभी के द्वारा सर्वत्र अनुभूति की जाती है। वस्तुतः वो पदार्थ मात्र न तो उत्पन्न हुए व न ही दिखाई देते हैं। ज्ञानी जन के लिए चिदाकाश स्वप्न में देखे गए दृश्य के समान है।

इस प्रकार चिद्भासात्मक जीव भी ब्रह्म से अभिन्न है। चिदाकाश ही चेत्योन्मुख होता हुआ जीव शब्द से कहा जाता है–

एवंविधं तत्कलनमात्मनोऽङ्गमकृत्रिमम्।
चेत्योन्मुखचिदाभासं जीव शब्देन कथ्यते।।[२०]

इस चेत्योन्मुख चिदात्मा की जीवन से (प्राणवान्) एवं चेतन (ज्ञानवान्)से जीवसंज्ञा है, चेत्योन्मुख होने से 'चित्' कहा जाता है। 'इदमित्थं' इस प्रकार के स्पष्ट बोध से बुद्धि व कल्पना तथा मनन का ज्ञान होने से मन कहा जाता है।

'अस्मीति' अर्थात् मैं हूं, इस बोध से 'अहङ्कार' व चेतना से परिपूर्ण होने पर शास्त्रवेत्ताओं द्वारा 'चित्त' कहा जाता है। प्रौढ़ संकल्प जाल से पुर्यष्टक कहा जाता है। प्रथम सृष्टि होने से 'प्रकृति' व बोध के अविद्यमान होने से 'अविद्या' कहलाता है। इस प्रकार चिदाभास जीव अनेक नामों से व्यवहृत है।[२१]

यह चिदाकाश रूप जीव निर्विकार व निराकार होता हुआ भी आतिवाहिक देह के कारण ज्ञानीजनों द्वारा आदि व अन्त युक्त कहा गया है। यह आतिवाहिक देह ही चिदाकाश, चित्तदेह व आकार शून्य कहा जाता है। यही चतुर्दश प्रकार की सृष्टि की उत्पत्ति का कारण है। इस प्रकार ब्रह्म में स्वप्नवत् इन भावों का स्फुरण है। चित्त इनमें आसक्त होता हुआ बद्ध होता है।

चित्त के विभ्रम के कारण– चित्त का जब तक देह में अहम्भाव रहता है तभी तक चित्त का विभ्रम रहता है। चिरकाल के अभ्यास के कारण चित्त की इस जगत् में वासना उत्पन्न हो जाती है–

देहे यावदहम्भावो दृश्येऽस्मिन्यावदात्मना।
यावन्ममेदमित्यास्था तावच्चित्तादिविभ्रमः।।[२२]

चित्त की वासना दो प्रकार की होती है। एक मलिना व दूसरी शुद्धा। मलिना वासना जन्म की हेतु है अत: इसका स्वरूप घने अज्ञान एवं घोर अहंकार से युक्त है तथा इस संसार चक्र में पुनर्जन्मकारिणी है।

पुनर्जन्मांकुर से रहित जो देहधारण मात्र के लिए स्थित रहती है वह शुद्धा वासना है। सम्पूर्ण भूत समूह वासना के कारण ही देह धारण करता है। अत: वासनाओं का सम्पूर्ण त्याग ही उत्तम मोक्ष कहा गया है–

अशेषेण परित्यागो वासनानां य उत्तम।
मोक्ष इत्युच्यते ब्रह्मन् स एव विमल क्रम: ।।[२३]

देह में चित्त की वासना का कारण देह में अहम्भाव है। यह देह अत्यन्त विकारी व क्लेशार्थ ही है। अविवेक एवं मोह का आधार होने से अभव्य व मोक्ष का आधार होने से भव्य है। अज्ञ होने पर भी अज्ञता का बोध रखती है, न जड़ है न चेतन है। परन्तु वासना का मूल कारण इसमें अहम्भाव है तथा यही बन्ध का कारण है।

वासना के कारण अपने पूर्व के सांसारिक भावों का स्मरण करता हुआ प्राणी अत्यन्त पीड़ित होता है एवं जराग्रस्त के सदृश भीतर से दग्ध होता है–

विषादयुक्तो विषमामवस्थामुपागत: कायवयोऽवसाने।
भावान् स्मरन् स्वानिह धर्मरिक्तान् जन्तुर्जरावानिह दह्यतेऽन्त: ।।[२४]

श्रीराम महर्षि वसिष्ठ से वासना से मुक्ति का कल्याणकारी उपाय बताने की विनती करते हैं–

क उपायो गति: का वा का चिन्ता क: समाश्रय:।
केनेयमशुभोदर्का न भवेज्जीविताटवी ।।[२५]

महर्षि वसिष्ठ वासना के क्षय को ही मोक्ष व पदार्थवासना की दृढ़ता को ही बन्ध कहते हैं–

वासनातानवं राम मोक्ष इत्युच्यते बुधै:।
पदार्थवासनादाढ्र्यम् बन्ध इत्यभिधीयते ।।[२६]

संसार में भोग भावना की दृढ़ता ही बन्ध है। उसके शान्त हो जाने पर बन्ध का नाश हो जाता है। चित्त को जन्म–जन्मान्तर से ही इसका अभ्यास है अत: इस चित्तरूपी बालक को प्रयत्नपूर्वक शनै: शनै: पौरुष द्वारा शुभवासना में योजित करना चाहिए।

मन ही बन्ध व मोक्ष का कारण– ब्रह्मबिन्दु उपनिषद् में मन को ही बन्ध एवं मोक्ष का कारण बताया गया है–

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो: ।[२७]

महर्षि वसिष्ठ कहते हैं कि मूढ़ ही स्वसंकल्प के कारण मोह को प्राप्त होता है। पण्डित मोहरहित विचारधी से युक्त होता है अत: चित्त के संकल्पों को विवेक से नष्ट कर देता है। वस्तुत: इस अनन्त, शान्त, आनन्दघन आत्मतत्त्व में स्थित होने पर कौन, किसके द्वारा किस प्रकार बद्ध होता है अर्थात् कोई नहीं। चिद्घनानन्द रूपी निर्विकल्पक, निराकार आत्मा के अतिरिक्त अन्य किसी दूसरे के न होने से आत्मा का बन्ध संभव ही नहीं है।

यह जगत् चित्त का उल्लास मात्र है चित्त के शान्त हो जाने पर मोक्ष ही अवशिष्ट रहता है –

तस्मादुल्लासमात्रं तु मनसो यवध्वां गतम् ।
मन: प्रशमने राम मोक्ष एवावशिष्यते ।।[२८]

चूंकि सम्पूर्ण जगत् मन का ही विलास है अत: मन के द्वारा जो किया गया उसे ही किया गया जानें, मन के द्वारा त्यक्त ही वस्तुत: त्यक्त है ऐसा जानना चाहिए।[२९]

भोग के संकल्पों से युक्त मानसिक वृत्तियां ही संसाररूपी विषवृक्षों की अङ्कुर योनि है। इस चित्तरूपी महाव्याधि की स्वयं अधीन महौषध है–शास्त्रज्ञान तथा सत्सङ्ग से समत्व को प्राप्त धीर, अतप्त मन के द्वारा चिन्ता से तप्त मन का छेदन। अपने पौरुषसाध्य मन के उपशमन के बिना स्वेप्सित त्याग रूपिणी शुभगति प्राप्त नहीं होती।

सर्वव्यापी, शान्त व सम्पूर्ण ब्रह्म तभी सम्पन्न होता है जब संकल्पाभाव रूप शस्त्र से चित्त का छेदन हो जाता है। अत: संसार भावना से रहित परम धी से चित्त को उद्वेगरहित एवं पौरुष के आश्रय से अचित्तता को प्राप्त कराकर ही उस परमपद को प्राप्त किया जा सकता है जहाँ नाश नहीं होता। अनुद्वेग ही कल्याण का मूल है। अनुद्वेग से ही मन का नियन्त्रण होता है जिससे त्रिलोकी विजय भी तृण ही है।[३०]

महर्षि वसिष्ठ कहते हैं कि जगत् में प्रत्येक शरीरधारी के दो शरीर होते हैं एक मन रूपी शरीर जो सदैव चलायमान है व क्षिप्रकारी होता है व दूसरा मांसयुक्त शरीर जो कुछ भी नहीं करता है–

सर्व एव जगत्यस्मिन् द्विशरीरा: शरीरिण: ।
एकं मन: शरीरं तु शिप्रकारी सदा चलम् ।
अकिञ्चिकरमन्यत्तु शरीरं मांसनिर्मितम् ।।[३१]

श्रीराम मन के स्वरूप के सम्बन्ध में जिज्ञासा करते हैं–

विस्तरेण मम ब्रह्मन् जड़स्याप्यजड़ाकृतेः।
रूपमारूढ़संकल्पं मनसो वक्तुमर्हसि ।।[३२]

महर्षि वसिष्ठ मन का स्वरूप कथन करते हैं कि अनन्त सर्वशक्तिमान् आत्मा का संकल्पशक्ति रचित जो रूप है वह मन है।[३३]

मनुष्यों का सत् व असत् के मध्य जो चलायमान भाव है तथा जो विविध संकल्पों की ओर गमन करता है वही मन का आकार है।[३४] संकल्पमय वासना के लीलामय जाल से यह स्वयं ही बन्ध को प्राप्त होता है। किन्तु जो प्रबुद्ध है उनका मन ब्रह्म ही है जो सर्वशक्तिमान्, नित्य पूर्ण व अव्यय है। ऐसा, कोई रूप, भाव या शक्ति नहीं है जो उस वितत आत्मा में विद्यमान न हो। जैसी शक्ति का उल्लास होता है तत्क्षण वही रूप प्रकट होता है।[३५]

ब्रह्म की चित्शक्ति शरीरों में दिखाई देती है स्पन्दन शक्ति वायु, तेजशक्ति अग्नि, शून्य शक्ति आकाश, भाव शक्ति संसार की स्थिति में दिखाई देती है। वह आत्मा सर्वत्र गमन करने वाला, नित्य प्रकाशमान् व वितत शरीर वाला है जब अल्प मनन शक्ति धारण करता है वह 'मन' कहलाता है। प्रारम्भ में केवल मन ही होता है तदनन्तर बन्धन व मोक्ष दृष्टियां होती हैं तत्पश्चात् सम्पूर्ण प्रपञ्च की रचना होती है–

आदौ मनस्तदनु बन्धविमोक्षदृष्टी।
पश्चात् प्रपञ्चरचना भुवनाभिधाना ।।[३६]

यह मेरा है, यह मेरा स्वरूप है इस प्रकार का संकल्पमात्र मन है। संकल्पाभाव रूपी शस्त्र से ही यह छिन्न हो जाता है–

अयं मोहऽहमिदं तन्म एतावन्मात्रकं मनः।
तदभावमात्रेण दात्रेणैव लूयते ।।[३७]

चञ्चलता मन का धर्म है वही मानसी शक्ति है, इस चञ्चलता से रहित मन को ही अमृत कहा जाता है, वही तप है, वही शास्त्र है एवं वही मोक्ष है। मन की चञ्चलता ही अविद्या नाम से कही जाती है उसी का अपरनाम वासना है। विचार के द्वारा इसका नाश करना चाहिए।[३८]

महर्षि वसिष्ठ कहते हैं कि अहङ्कार ही इस वासना का मूल कारण है। जब तक चित्ज्योत्स्ना अन्तरहङ्कार से युक्त रहती है तब तक परमतत्त्व का बोध संभव नहीं है। अक्षय आत्मा का अहम्भाव ही जन्मवृक्षों का अङ्कुर है, 'यह मेरा है' इस रूप में इसकी सैकड़ों शाखाएं विस्तीर्ण हैं।

श्रीराम महर्षि वसिष्ठ से अहङ्कार के स्वरूप के विषय में प्रश्न करते हैं–अहङ्कार का स्वरूप क्या है, उसका त्याग कैसे किया जाता है यह सशरीर है या अशरीर?

अहङ्कार का स्वरूप– श्रीराम की जिज्ञासा का उपशमन करते हुए महर्षि वसिष्ठ त्रिविध अहङ्कार का निरूपण करते हैं। जगत में तीन प्रकार के अहङ्कार है–

१. प्रथम अहङ्कार है–'मैं ही सकल विश्व हूँ अच्युत परमात्मा हूँ, मुझसे अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है' जब इस प्रकार का बोध होता है तो यह प्रथम अहङ्कार है–इससे किसी भी प्रकार का बन्ध प्राप्त नहीं होता अपितु यह मोक्ष स्वरूप ही है।

२. 'बालाग्रशतकल्पित मैं इन सबसे भिन्न हूं इस संसार से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है।' इस प्रकार का बोध दूसरे प्रकार का अहङ्कार है। यह शुभ है तथा यह बन्धन नहीं अपितु जीवन्मुक्त के मोक्ष के लिए है।

३. हस्तपादादि से युक्त यह देह ही मेरा स्वरूप है अर्थात् देह मात्र (लोक) में आसक्ति व उसे ही अपना स्वरूप समझना तीसरे प्रकार का अहङ्कार है जो लौकिक एवं तुच्छ है तथा सर्वथा त्याज्य है। यही अहङ्कार बन्ध का, पुनर्जन्म का कारण है व सकल दु:खों का आश्रय है।

दु:खनिवृत्ति के उपाय– महर्षि वसिष्ठ सकल दु:खों से निवृत्ति का उपाय एकमात्र मन का निग्रह कहते हैं–

संसारस्यास्य दु:खस्य सर्वोपद्रवदायिन:।
उपाय एक एवास्ति मनस: स्वस्य निग्रह:॥[३९]

भोग की इच्छा मात्र बन्ध व इसका त्याग ही मोक्ष है। जब तक चित्त का इस दृश्य जगत् में 'यह मेरा है' इस प्रकार की वासना है तभी तक चित्त विभ्रम है। जब भोगों के प्रति अनास्था हो जाती है तो शीतल व अमल वृत्ति वाला तथा पाशजाल के नाश वाले चित्त का विभ्रम भी नष्ट हो जाता है।[४०]

इस संसार से पार जाने का उपाय ही योग है–

संसारोत्तरणे युक्तिर्योगशब्देन कथ्यते[४१]

राम के द्वारा अहङ्कार के नाश व चित्त की अचित्तता के उपाय पूछने पर वसिष्ठ योग को ही उपाय के रूप में निरूपण करते हैं। यह योग दो प्रकार का है १. आत्मज्ञान, २. प्राण निरोध। राम इन दोनों में श्रेष्ठ व सरल, अकष्टकारी उपाय के विषय में प्रश्न करते हैं।

महर्षि वसिष्ठ कहते हैं कि यद्यपि दोनों ही योग शब्द से कहे गए हैं किन्तु योग शब्द प्राण-निरोध अर्थ में ही अधिक रूढ़ हैं। दोनों समान फल देने वाले हैं-

एको योगस्तथा ज्ञानं संसारोत्तरणक्रमे।
समावुपायौ द्वाविव प्रोक्तावेकफलप्रदौ ।।[४२]

राम के द्वारा अहङ्कार को समस्त आपत्तियों, आधि-व्याधि का मूल बताया जाता है तथा मन का निग्रह वज्र से भी कठिन बताया जाता है। महर्षि वसिष्ठ कृष्ण-अर्जुन संवाद एवं अन्य कथाओं के माध्यम से मन के निग्रह एवं मोक्ष के उपायों का निरूपण करते हैं-

मोक्ष के उपाय- वैराग्य, अभ्यास व तत्त्वज्ञान संसार से पार जाने का उपाय है अत: उसमें प्रयत्न करना चाहिए। मोक्षद्वार के चार द्वारपाल हैं-उन सबकी अथवा उनमें से एक-दो या तीन की प्रयत्नपूर्वक उपासना करनी चाहिए-

मोक्षद्वारे द्वारपालाश्चत्वार: परिकीर्तिता:।
शमो-विचार-सन्तोषश्चतुर्थ: साधुसंगम: ।।[४३]

संसारविषवेशधारिणी विषूचिका दु:सह व्याधि है अत: योगरूपी पावन गारुडमन्त्र से इसका शमन करना चाहिए। इसके लिए शास्त्र ज्ञान व तपस्वी, संयमी साधुजनों की संगति से 'प्रज्ञा' की वृद्धि करनी चाहिए।

दुष्परिणाम प्रदान करने वाली इस सांसारिक विष विषूचिका की अवहेलना करना उचित नहीं है। इसकी निवृत्ति के लिए प्रयत्न आवश्यक है-

स्वानुभूतेश्च शास्त्रस्य गुरोश्चैकवाक्यता।
यस्याभ्यासेन तेनाऽऽत्मा सन्ततेनावलोक्यते ।।[४४]

अर्थात् वैराग्य व अभ्यास द्वारा जिसे अनुभूति प्राप्त हो गई है, शास्त्र के चिन्तन-मनन व गुरुपदेश तीनों (अनुभूति, शास्त्र व गुरूपदेश) की जिसके एकरूपता हो गई उसी पुरुष द्वारा सतत अभ्यास से आत्म साक्षात्कार किया जाता है।

इनमें से एक के अभाव से भी चित्त की शान्ति व मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती। चूँकि संसारमार्ग की अनेक जन्मों से वासना है अत: उसकी निवृत्ति के लिए प्रबल वैराग्य, सतत अभ्यास व तत्त्वज्ञान की आवश्यकता है। प्रज्ञा बुद्धि से चित्त के विभ्रम व नश्वरता को जानकर निरन्तर शास्त्र मनन व गुरुप्रदत्त युक्तियों द्वारा अभ्यास ही चित्तनिग्रह व वासना शमन के उपाय हैं। अत: संसार सागर से उत्तीर्ण होने के

लिए पूर्ण पौरुष से सतत प्रयत्न करना आवश्यक है। अहङ्कार के नाश से तृष्णा का नाश हो जाता है। तृष्णा के क्षय से चित्त उत्तम शम को प्राप्त करता है। वासना क्षय व तत्त्वज्ञान के लिए मोक्ष द्वार के द्वारपालों का प्रयासपूर्वक सेवन करना चाहिए। इनकी प्राप्ति से तत्त्वज्ञान, मनोनाश व वासनाक्षय होता है–

शम– शम गुण जिसके पास है वह शान्त कहा जाता है। शम की उपासना से सकल दु:ख, तृष्णा व मानसिक व्याधियों की शान्ति से चित्त शान्त हो जाता है। रसायन के पान व लक्ष्मी की प्राप्ति से भी वह सुख प्राप्त नहीं होता जो शान्ति से होता है। जिसे शुभाशुभ देखकर, खाकर, सूंघकर न हर्ष होता है न ग्लानि होती है। वह शान्त कहलाता है। मृत्यु–उत्सव–युद्धादि में जिसका मन चन्द्रमा के बिम्ब के समान निराकुल है वह शान्त है। शम अमृत है–श्रेष्ठ पुरुषों ने इसका अवलम्बन कर परम पद प्राप्त किया।

विचार– परम पवित्र शास्त्रज्ञान से युक्त बुद्धि (जो कार्य–कारण को जानती है) द्वारा अनिश आत्मतत्त्व का विचार करना चाहिए। विचार से तीक्ष्णता को प्राप्त हुई बुद्धि परम पद का साक्षात्कार करती है। विचार इस दीर्घसंसार रूपी रोग की महौषध है। 'मैं कौन हूं?' 'यह संसार किसका है?' इस प्रकार का चिन्तन बुद्धिमान् व्यक्ति द्वारा विपत्ति में भी किया जाना चाहिए।

कोऽहं कथमयं दोष: संसाराख्य उपागत:।
न्यायेनेति परामर्शो विचार इति कथ्यते।।[४५]

सन्तोष– सन्तोष परम श्रेयस्कर है, परम सुख है। सन्तोषामृत का पान करने वाला परम सन्तुष्टि को प्राप्त करता है। अप्राप्त की वाञ्छा छोड़कर, प्राप्त वस्तु में समभाव रखने वाला, अदृष्ट के प्रति विषाद या हर्ष न रखने वाला सन्तुष्ट कहा जाता है।

जो अप्राप्त की प्राप्ति की कामना नहीं करता, प्राप्त वस्तु का यथाक्रम भोग करता है, जो सौम्य व उत्तम आचार वाला है वह सन्तुष्ट कहलाता है। सन्तुष्ट पुरुष को श्रेष्ठजन, देवगण एवं मुनिगण भी नमन करते हैं।

साधुसंगम– सज्जनों की संगति संसार सागर को पार करने में अत्यन्त कल्याणकारिणी होती है। साधुसंगति सर्वत्र सदा उपकार करती है–

विशेषेण महाबुद्धे संसारोत्तरणे नृणाम्।
सर्वत्रोपकरोतीह साधु साधुसमागम:।।[४६]

साधुसंगम वस्तुत: शून्य को जनाकीर्ण, मृत्यु को उत्सव, आपत् को संपत् के सदृश बना देती है, जो इस शीतल गङ्गा से स्नात है उसे दान, तीर्थ, तप, यज्ञ आदि से कोई प्रयोजन नहीं रहता। हृद्ग्रन्थि

के विच्छेद से युक्त एवं आत्मज्ञ साधुजन सबके अभिनन्दनीय हैं।

संसार का छेदन करने के ये शमादि चार उपाय हैं। इनका सेवन करने वाले भवसागर से पार गये हैं।[४७] इनके सेवन का परमोत्तम फल है–

लोभमोहादयो दोषास्तानवं यान्त्यलं शनैः।
मनः प्रसादमायाति शरदीव महत्सरः ।।[४८]

अर्थात् इन उपायों के सेवन से लोभ–मोह आदि विकार नष्ट होते हैं तथा मन निर्मलता को प्राप्त हो प्रसन्न हो जाता है जैसे शरद ऋतु में सरोवर। गीता में भी मन के प्रसाद को सकल दुःखों का क्षय बताया गया है। जिनका गुणों में असन्तोष है अर्थात् जो गुणवृद्धि से विरत नहीं है, शास्त्रों के प्रति जिनका अनुराग है तथा जो सत्यव्यसनी है वस्तुतः वे ही मनुष्य हैं अन्य तो पशु हैं।[४९]

इसका तात्पर्य है कि वही मनुष्य वस्तुत बुद्धिमान है, पण्डित है तथा मनुष्य कहलाने का पात्र है जो शमादि गुणों में अनुरक्त है, शास्त्र चिन्तन में अपना पौरुष योजित करता है तथा सत्य संधान में सतत प्रयत्नशील है। इससे विपरीत अविद्यारत मनुष्य वस्तुतः पशु ही है तथा जन्म जन्मान्तर तक उस घने अंधकार में प्रवेश करते हैं जिसका श्रुति निरूपण करती है। अतः अत्यन्त आपत्ति में भी शास्त्रोक्त क्रम का व्यतिक्रम नहीं करना चाहिए व न ही सिद्धि के लिए त्वरा करनी चाहिए क्योंकि चिरकाल में परिपक्व सिद्धि ही उत्तम फल वाली होती है।[५०]

तत्त्वज्ञान, मनोनाश व वासना क्षय की परस्पर कारणता है। वासना के त्याग से चित्त अचित्तता को प्राप्त हो जाता है।[५१] जो प्राण का स्पन्दन है वही चित्त का स्पन्दन है। प्राणायाम के अभ्यास से प्राण स्पन्दन को जय करने का प्रयत्न करना चाहिए–

यः प्राणपवनस्पन्दः चित्तस्पन्द स एव हि।
प्राणस्पन्दजये यत्नः कर्तव्यो धीमतामुच्चकैः ।।[५२]

जिस प्रकार मदमत्त दुष्ट गज को अङ्कुश से ही नियंत्रित किया जा सकता है उसी प्रकार अध्यात्म विद्या के ज्ञान, साधुसङ्गम, वासना के त्याग एवं प्राणस्पन्दन के निरोध से चित्त को जय किया जा सकता है। ये चित्त को जय करने की परमपुष्ट युक्तियां हैं।

उत्तमपद की प्राप्ति– राम वसिष्ठ द्वारा बीज रूप में बताए गए इन उपायों के प्रति जिज्ञासा करते हैं कि इनमें से किस प्रयोग द्वारा उत्तम पद की प्राप्ति शीघ्र होती है–

एतानि तानि प्रोक्तानि त्वया बीजानि मानद।
कतमस्य प्रयोगेण शीघ्रं तत्प्राप्यते कथम् ।।[५३]

वसिष्ठ जी इसका उत्तर देते हैं–

एतेषां दु:खबीजानां प्रोक्तं यद्यन्मयोत्तरम् ।
तस्य तस्य प्रयोगेण शीघ्रमासाद्यते पदम् ।।
(उपशम प्र. ४/२)

अर्थात् मेरे द्वारा दु:ख के बीजों के उत्तरोत्तर बताए गए उपायों द्वारा वह परम पद शीघ्र प्राप्त हो जाता है। इन उपायों द्वारा उस पद की प्राप्ति को पुन: संक्षेप में कहते हुए महर्षि वसिष्ठ सूत्र रूप में उपस्थित करते हैं–

१. सामान्य कोटि में स्थित परम पद में बल व प्रयत्नपूर्वक पौरुष से वासना का त्याग कर समाधि प्राप्त करने पर क्षणभर में ही परम पद की प्राप्ति हो जाती है।

२. यदि एक क्षण भी अक्षयात्मिका स्थिति बांध लें तो उसी क्षण परम पद को पूर्ण रूप से प्राप्त कर सकते हैं।

३. यदि सत्ता सामान्य में स्थिति करें तो कुछ अधिक प्रयत्न से परम पद की प्राप्ति होगी।

४. यदि संवित् तत्त्व में ध्यान करके स्थित रहें तो अत्यधिक प्रयत्न से उस परम पद की प्राप्ति होगी। केवल संवित् का ध्यान ही नहीं अपितु वासनाओं का त्याग भी आवश्यक है। वासना के त्याग बिना चित्त शान्त नहीं होता।[५४]

संवित् की स्थिति सर्वत्र ही नित्य है। वासना के त्याग में प्रयत्न करने से सकल आधि–व्याधि क्षणभर में नष्ट हो जाती है।

तत्त्वज्ञान के बिना चित्त शान्ति प्राप्त नहीं होती, चित्त शान्ति के बिना तत्त्वबोध संभव नहीं, वासना के नाश से तत्त्वज्ञान होता है, तत्त्वसम्प्राप्ति के बिना वासना का क्षय नहीं होता व वासना के क्षय बिना चित्त की शान्ति नहीं।

इस प्रकार तत्त्वज्ञान, मनोनाश व वासनाक्षय परस्परापेक्षी है अतएव अत्यन्त कठिनता से साध्य हैं।[५५]

अत: तत्त्वाभिलाषी को प्रयत्नपूर्वक पौरुष व विवेक द्वारा भोगेच्छा को दूर से ही त्याग कर इन तीनों का आश्रय लेना चाहिए। इन तीनों के चिर काल के अभ्यास से दृढ़ हृदयग्रन्थियाँ भी पूर्ण रूप से टूट जाती हैं –

त्रिभिरेतैश्चिराभ्यस्तै र्हृदयग्रन्थयो दृढ़ा: ।
नि:शेषमेव त्रुट्यन्ति विच्छेदाद् गुणा इव ।।[५६]

सैकड़ों वर्षों की अभ्यस्त संसार की स्थिति चिराभ्यास के बिना क्षय को प्राप्त नहीं होती।

वासना के परित्याग व प्राण निरोध इन दो उपायों से चित्त अचित्तता को प्राप्त होता है। अत: अचित्तता को प्राप्त करने का यथारुचि उपाय करना चाहिए।

देवार्चन: मोक्ष प्राप्ति का श्रेष्ठ उपाय– राम के द्वारा मोक्ष प्राप्ति के श्रेष्ठ उपाय विषयक जिज्ञासा का महर्षि वसिष्ठ स्वयं एवं महेश्वर के संवाद का निरूपण करते हुए उपशमन करते हैं–

महर्षि वसिष्ठ द्वारा पूजा–अर्चना आदि के पश्चात् 'निश्चय ही मोक्ष प्राप्ति का उपाय' विषयक प्रश्न किया जाता है–

सर्वपापक्षयकरं सर्वकल्याणवर्धनम्।
देवार्चनविधानं तत्कीदृशं भवति प्रभो।। (निर्वाण २३/३०)

शिव द्वारा हरिहर ब्रह्मादि देवार्चनों को निष्फल बताये जाने पर वसिष्ठ उत्तम देवार्चन के विषय में प्रश्न करते हैं। 'सर्वपापों को क्षय करने वाला, सकल कल्याणकारी देवार्चन किस प्रकार का है'

इसका समाधान करते हुए शिव कहते हैं कि–

न तो कमल से उत्पन्न ब्रह्मा ही देव है, न ही विष्णु देव है, न अग्नि देव है, न शिव देव है, न इन्द्र देव है, न सूर्य न चन्द्रमा ही देव है। न देहरूपधारी कोई देव है, न मति देवता है न ही चित्तरूपधारी देवता है। न लक्ष्मीदेवता है ये सभी तो चित्त की संकल्पनाओं से उल्लसित होने से चित्त विभ्रम ही है तथा ये सभी अज्ञान की विभूतियाँ हैं।[५७]

इन अज्ञान की विभूतियों का अर्चन वस्तुत: अविद्या की ही उपासना है। जो महान् विषरूपी लता है एवं संसार विषरूप मूर्च्छना प्रदान करती है। पूर्वापर का विचार करने पर कार्यरूपी यह अविद्या शीघ्र नष्ट हो जाती है।

ज्ञानीजनों में यह अविद्या लय को प्राप्त हो जाती है परन्तु सृष्टि रूपिणी यह कार्य–अविद्या अज्ञानी पुरुष में अत्यधिक विस्तार को प्राप्त करती है तथा जन्म–जन्मान्तर तक बन्ध का कारण बनती है।

अत: अकृत्रिम, अनादि, अनन्त परम चैतन्य रूप देव ही वस्तुत: देव है। सर्वत्र उसी की सत्ता होने के कारण एकमात्र वह चित् ही देव है। रुद्रादि देव तो अर्चन से सीमित फल प्रदान करते हैं। अकृत्रिम–अनादि–अनन्त–फल की प्राप्ति करने के लिए आत्मार्चन ही श्रेष्ठ अर्चन है।[५८]

बोध, साम्य (समत्व भाव) व शम ही पुष्प हैं। इन पुष्पों द्वारा जो आत्मा की उपासना-अर्चन है वही वस्तुत: देवार्चन है-

राम बोधादिभि: पुष्पैर्देव आत्मा यदर्च्यते।
तत्तु देवार्चनं विद्धि नाऽकारार्चनमर्चनम्।।[५९]

आत्मसंवित् रूप देवार्चन को छोड़कर जो हरि-हरादि कृत्रिम देवों के अर्चन में रत हैं वे मनुष्य चिरकाल तक क्लेश प्राप्त करते हैं एवं पुनर्जन्म की शृङ्खला में आबद्ध होते हैं। इस अपने परमचित् स्वभाव को भूलने के कारण ही जीव जड़ता को प्राप्त होता है। यही अविद्या है। वस्तुत: विद्या का अभाव ही अविद्या है। इस प्रकार विद्या-अविद्या परस्पर विरोधी हैं जैसा कि कठोपनिषद् में भी निरूपण है।

परमतत्त्वज्ञ के लिए न विद्या है न ही अविद्या है। यह भी अज्ञानियों की अपेक्षा से किया व्यवहार है। प्रकृति ही अविद्या है। उसका अभाव ही विद्या है। इस प्रकार अज्ञानियों के बोध के लिए विद्या-अविद्या का निरूपण है।

वास्तविक जीवन तो मननपूर्वक वासना का क्षय ही है। अत: विवेक बुद्धि द्वारा तत्त्वबोध व वासना क्षय के लिए सतत प्रयत्नशील रहना ही जीवन है। अविवेकी का 'शास्त्रज्ञान' भार है, अशान्त का 'मन' भार है व अनात्मज्ञ का 'वपु' भार है। अहन्ताजन्य वासना ही इसका कारण है। अत: बुद्धिमान को विवेक उत्पन्न होने तक शास्त्र एवं गुरूपदेश के अनुरूप आचरण करना चाहिए। क्योंकि अहङ्कार सकल आपत्तियों व आधि-व्याधियों का मूल है। वासना का कारण है। वासना के कारण ही इन्द्रियाँ हमारी शत्रु बन जाती हैं। अत: शुभवासना द्वारा मन को नियंत्रित करना चाहिए व तत्त्वबोध होने पर शुभवासना का भी त्याग श्रेयस्कर है।

इस प्रकार तत्त्वबोध व प्राणनिरोध, वासना का त्याग आदि का निरूपण करते हुए योगवासिष्ठ में ज्ञान व कर्म दोनों की ही मोक्षसाधनता स्वीकार की गई है-

उभाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गति:।
तथैव ज्ञानकर्माभ्यां जायते परमं पदम्।।
केवलात् कर्मणो ज्ञानान्नति मोक्षोऽभिजायते।
किन्तु उभाभ्यां भवेन्मोक्ष: साधनं उभयं विदु:।।[६०]

अर्थात् जिस प्रकार पक्षियों की आकाश में गति दोनों पंखों द्वारा होती है उसी प्रकार ज्ञान व कर्म दोनों द्वारा परम पद की प्राप्ति होती है। केवल ज्ञान व केवल कर्म से मोक्ष संभव नहीं है। परम चित्स्वरूप

अनन्त सर्वशक्तिमान उस ब्रह्म से भिन्न कुछ भी सत्ता न होने से एवं जगत् के स्वप्नवत् मिथ्या होने से अतत्त्वज्ञ के लिए ही सम्पूर्ण शास्त्र हैं। ज्ञानी के लिए तो कुछ भी शेष नहीं है।

'इति शम्'

सन्दर्भ

१. योगवासिष्ठ-वैराग्यप्रकरण १/५१

२. अहं बद्धो विमुक्तः स्यामिति यस्यास्ति निश्चयः।
नाऽत्यन्तमज्ञो नो तज्ज्ञः सोऽस्मिञ्छास्त्रेऽधिकारवान्।। वै.प्र. २/२

३. वैराग्य प्रकरण ३/४

४. वैराग्य प्रकरण २/१६, श्वेता.उप.६/११, कठोपनिषद्-२/२/८, ९, यजुर्वेद ३१/२

५. या सम्पदो याश्च दृशो याश्चितो यास्तदेषणाः।
ब्रह्मैव तदनाद्यनन्तमब्धिवात्विजृम्भते ।। वैराग्य प्रकरण २/१८-१९

६. वैराग्य प्रकरण उत्तरार्ध १०१/६२

७. वैराग्य प्रकरण २/३७

८. निर्वाण प्रकरण (पूर्वार्द्ध) ६६/२

९. अविवेक विवेकाभ्यां भाङ्गुरं भङ्गुरं जगत्।
बोधे सदैव सद्रूपमभासुरमभंगुरम्।। निर्वाण प्र.(पू.)६६/८

१०. निर्वाण प्रकरण (पू.) ६६/९

११. निर्वाण प्रकरण (पू.) ६६/१३, १५

१२. उत्पत्ति प्रकरण १/६-७

१३. उत्पत्ति प्रकरण १/१३

१४. उत्पत्ति प्रकरण १/१४

१५. उत्पत्ति प्रकरण १/१५, १६, ऋग्वेद - १०/१२९/४

१६. निर्वाण प्रकरण (उत्त.) १०२/१

१७. काकतालीयवद्भान यत् परे नियतं स्वतः।
यथास्थितं यथारूपस्थितं तज्जगदुच्यते।। निर्वाण प्रकरण (उत्त.) १०२/३

१८. निर्वाण प्र. (उत्त.) १०२/६

१९. निर्वाण प्र. (उत्त.) १०२/१५

२०. निर्वाण प्रकरण (उत्त.) १०३/२

२१. निर्वाण प्रकरण (उत्त.) १०३/३-८

२२. निर्वाण प्रकरण (पूर्वा.) १/२२

२३. वैराग्य प्रकरण ३/८, मुमुक्षु व्यवहार प्रकरण-३/६,७,८

२४. वैराग्य प्रकरण २६/१४

२५. वैराग्य प्रकरण ३०/१

२६. मुमुक्षु व्यवहार प्रकरण २/४
अनेनैव क्रमेणेतौ बन्धमोक्षौ व्यवस्थितौ ।
भावनातानवं मोक्षो बन्धो हि दृढ़भावना ।। निर्वाण प्रकरण (पू.) ४२/७१

२७. ब्रह्मबिन्दु उपनिषद् १/२

२८. उत्पत्ति प्रकरण ८/४

२९. यत्कृतं मनसा तात तत्कृतं विद्धि राघव ।
यत्त्यक्तं मनसा तावत्त्यक्तं विद्धि चानघ। उत्पत्ति प्र. ९/१

३०. अनुद्वेग: श्रियो मूलमनुद्वेगात् प्रवर्तते ।
जन्तोर्मनोजयो येन त्रिलोकी विजयस्तृणम् ।। उत्पत्ति. ९/१४

३१. उत्पत्ति प्रकरण ६/१-२
सर्वस्या एव राजर्षे: भूतजाते जगत्त्रये ।
देवदेरपि देहोऽयं द्वयात्मैव स्वभावत: ।।
अज्ञमस्त्वथ तज्ज्ञं वा यावत्स्वान्त शरीरकम् ।
सर्वमेव जगत्यङ्ग सुखदु:खमयं स्मृतम् ।। निर्वाण प्रक. ४२/६७, ६८

३२. उत्पत्ति प्रकरण ६/३

३३. अनन्तस्यात्मतत्त्वस्य सर्वशक्तेर्महात्मन: ।
संकल्पशक्तिरचितं यद्रूपं तन्मनो विदु: ।। उत्पत्ति. ६/४

३४. उत्पत्ति प्रकरण ६/५, ९/२८

३५. उत्पत्ति प्रकरण ७/१, २

३६. उत्पत्ति प्रकरण ७/८

३७. उत्पत्ति प्रकरण ९/१७

३८. यत्तु चक्रचलताहीनं तन्मनोऽमृतमुच्यते ।
तस्य चञ्चलता यैषा त्वविद्यानाम सोच्यते ।। उत्पत्ति-९/२५, २६
वासनापदनाम्नीं तां विचारेण नाशय

३९. स्थिति प्रकरण ४/१
४०. निर्वाण प्रकरण (पू.) १/२२, २४
४१. निर्वाण प्रकरण (पू.) १३/३
४२. निर्वाण प्रकरण (पू.) १३/७
४३. मुमुक्षु व्यवहार ३/४७
४४. मुमुक्षु व्यवहार ३/५५
४५. मुमुक्षु व्यवहार ३/७२
४६. मुमुक्षु व्यवहार ३/७९
४७. मुमुक्षु व्यवहार ३/८२
४८. मुमुक्षु व्यवहार ३/८६
४९. स्थिति प्रकरण ३/४
५०. अप्यापदि दुरन्तायां नैव गन्तव्यमक्रमे।
राहुरप्यक्रमेणैव पिबन्नप्यमृतं मृतः।।
यथाशास्त्रं विहरता त्वरा कार्या न सिद्धिषु।
चिरकाल परिपक्वा सिद्धिः पुष्टफला भवेत्।। स्थिति प्रकरण-३/५६
५१. स्थिति प्रकरण ४/१४
५२. उपशम प्रकरण ७/२७
५३. उपशम प्रकरण ४/१
५४. यावद्विलीनं न मनो न तावद्वासनाक्षयः।
न क्षीणा वासना यावच्चित्तं तावन्न शाम्यति।। उपशम ०४ /८
५५. यावन्न तत्त्वविज्ञानं तावच्चित्तशमः कुतः।
यावन्न चित्तोपशमो न तावत्तत्त्ववेदनम्।।
यावन्न वासनानाश स्तावत्तत्त्वागमः कुतः।
यावन्न तत्त्वसम्प्राप्तिर्न तावद्वासनाक्षयः।। उपशम ४/१२, १३
५६. उपशम ७/२०
५७. निर्वाण प्रकरण (पू.) ७/१७-२३, २३/३१-३५
५८. निर्वाण प्रकरण (पू.) २३/३८
५९. निर्वाण प्रकरण (पू.) २३/४१
६०. वैराग्य प्रकरण १/७-८